केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

बनाम

एम. शिवमणि

2017 की आपराधिक अपील संख्या 1261-1262

01 अगस्त 2017

[माननीय न्यायमूर्ति श्री आदर्श कुमार गोयल एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री उदय उमेश ललित]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195(1)(क)(i) — इसके अधीन निषेध — बीमा दावे की याचिका में पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध बीमाकर्ता द्वारा चुनौती दिए जाने पर, उच्च न्यायालय ने इस आरोप के संबंध में कि दावा मिथ्या था, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण का आदेश दिया — अन्वेषण के पश्चात केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने आरोपपत्र प्रस्तुत किया — प्रतिवादी ने यह कहते हुए याचिका दायर की कि धारा 195(1)(क)(i) के अधीन निषेध लागू है, क्योंकि धारा 182 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराध के संबंध में संज्ञान केवल संबंधित लोक सेवक या उसके प्रशासनिक अधीनस्थ किसी अन्य लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत के बिना नहीं लिया जा सकता — विचारण न्यायालय ने उक्त याचिका को निरस्त कर दिया — पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को पलट दिया — अपील पर अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय का निर्देश उस स्थिति के समतुल्य है जिसमें कोई प्रशासनिक रूप से वरिष्ठ लोक सेवक विधि द्वारा अपेक्षित लिखित शिकायत करने का निर्देश देता है — धारा 195 द्वारा किसी निजी व्यक्ति द्वारा तुच्छ शिकायत दायर करने के विरुद्ध जो संरक्षण प्रदान किया गया है, वह उस स्थिति में सुनिश्चित हो जाता है जब उच्च न्यायालय यह पाता है कि लोक हित में मामले की जांच आवश्यक है — ऐसी स्थिति में धारा 195 का सहारा लेकर उस निर्देश को निष्फल नहीं किया जा सकता — जब एक बार उच्च न्यायालय धारा 195 में उल्लिखित किसी निर्दिष्ट अपराध के संबंध में अन्वेषण का निर्देश देता है, तब धारा 195(1)(क) के अधीन निषेध लागू नहीं किया जा सकता —

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 182।

अपीलों को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :

यद्यपि किसी निर्दिष्ट अपराध के संज्ञान ग्रहण करने के विरुद्ध निषेध अनिवार्य है, तथापि इसे उस उद्देश्य के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसके लिए ऐसा निषेध स्थापित किया गया है। यह निषेध अपराध के विरुद्ध उपाय को समाप्त करने के लिए नहीं, बल्कि किसी निजी व्यक्ति द्वारा झूठे या तुच्छ वादों से निर्दोष व्यक्ति की रक्षा करने के लिए है। "लोक सेवक या उसका प्रशासनिक वरिष्ठ" अभिव्यक्ति में उच्च न्यायालय को अपवर्जित नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय के निर्देश में यह स्पष्टतः निहित है कि न्याय के हित में संबंधित अपराध का संज्ञान लेना आवश्यक था। उच्च न्यायालय का निर्देश उस स्थिति के समतुल्य है जिसमें कोई प्रशासनिक रूप से वरिष्ठ लोक सेवक विधि द्वारा अपेक्षित लिखित शिकायत करने का निर्देश देता है। धारा द्वारा किसी निजी व्यक्ति द्वारा तुच्छ शिकायत दायर करने के विरुद्ध जो संरक्षण प्रदान किया गया है, वह उस स्थिति में सुरक्षित हो जाता है जब उच्च न्यायालय यह पाता है कि मामले की जांच लोक हित में आवश्यक है। ऐसी स्थिति में धारा 195 का सहारा लेकर उस निर्देश को निष्फल नहीं किया जा सकता। जब एक बार उच्च न्यायालय धारा 195 में उल्लिखित किसी निर्दिष्ट अपराध के संबंध में अन्वेषण का निर्देश देता है, तब धारा 195(1)(क) के अधीन निषेध लागू नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण विधि के उद्देश्य को विफल करेगा और उसे स्थिर नहीं रखा जा सकता। (अनुच्छेद 11) (516-ई-एच; 517-ए)।

स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश बनाम माता भीख, **(1994) 4 एस.सी.सी. 95 : [1994(2) एस.सी.आर. 368];** *इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह,* **(2005) 4 एस.सी.सी. 370 : [2005(2) एस.सी.आर. 708];** *पेरुमल बनाम जनाकी,* **(2014) 5 एस.सी.सी. 377 : [2014(1) एस.सी.आर. 591];** *एम. एस. अहलावत बनाम हरियाणा*

राज्य, **(2000) 1 एस.सी.सी. 278 : [1999(4) परिशिष्ट एस.सी.आर. 160] — संदर्भित।**

<u>नज़ीर संदर्भ</u>

[1994 (2) एस.सी.आर. 368]	**कंडिका 9**	**संदर्भित**
[2005 (2) एस.सी.आर. 708]	**कंडिका 9**	**संदर्भित**
[2014 (1) एस.सी.आर. 591]	**कंडिका 9**	**संदर्भित**
[1999 (4) परिशिष्ट एस.सी.आर. 160]	**कंडिका 10**	**संदर्भित**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2017 की आपराधिक अपील संख्या 1261-1262

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण वाद संख्या 2 सन् 2009 तथा एम. पी. संख्या 1 सन् 2009 में पारित दिनांक 16.10.2015 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

सुश्री पिंकी आनंद, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री कैलाश वासुदेव, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री अलका अग्रवाल, मुकेश कुमार मारोरिया, हेमंत आर्य, अधिवक्ता, अपीलकर्ता की ओर से।

बसंत आर., वरिष्ठ अधिवक्ता, सेंथिल जगदीशन, सुश्री श्रुति अय्यर, कार्तिक अशोक, अरुण अंबुमणि, अधिवक्ता, प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **माननीय न्यायमूर्ति श्री आदर्श कुमार गोयल** द्वारा प्रदान किया गया।

1. ये अपीलें मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण वाद संख्या 2 सन् 2009 तथा एम. पी. संख्या 1 सन् 2009 में पारित दिनांक 16 अक्टूबर, 2015 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई हैं। उच्च न्यायालय ने चेन्नई स्थित केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

मामलों के अतिरिक्त विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित सी.सी. संख्या 15 सन् 2007 में प्रतिवादी के विरुद्ध कार्यवाही को निरस्त कर दिया है।

2. अपीलकर्ता-केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध प्रस्तुत आरोपपत्र में उल्लिखित तथ्य यह हैं कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कुड्डालोर के समक्ष मोहम्मद फारूक की दिनांक 11 अक्टूबर, 2002 को एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु के लिए 22,00,000 रुपये के प्रतिकर की मांग करते हुए एक दावा याचिका दायर की गई थी। उक्त अधिकरण ने आंशिक रूप से दावे को स्वीकार करते हुए 14,97,000 रुपये का प्रतिकर प्रदान किया। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी द्वारा दायर अपील पर मद्रास उच्च न्यायालय ने इस आरोप की जांच हेतु कि दावा मिथ्या था, सीबी-सीआईडी द्वारा अन्वेषण का आदेश दिया। अन्वेषण के पश्चात सीबी-सीआईडी ने आरोपपत्र प्रस्तुत किया। यह मामला बाद में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्देशों के अधीन केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को हस्तांतरित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अभियुक्त संख्या 1 से 9 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 120-ख सहपठित 182, 420, 468, 468 सहपठित 471 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(घ) तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 511 के अधीन आरोपपत्र प्रस्तुत किया। प्रतिवादी अभियुक्त संख्या 5 है। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अनुसार, अभियुक्त संख्या 1 ने अन्य अभियुक्तों के साथ मिलीभगत कर मिथ्या दावा प्रस्तुत करके बीमा कंपनी के साथ छल किया। मोहम्मद फारूक को चोटें स्वयं स्कूटर से गिरने के कारण आई थीं, न कि कथित दुर्घटना में। षड्यंत्र में विभिन्न अभियुक्तों को भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ सौंपी गई थीं। प्रतिवादी, जो एक अधिवक्ता है, की भूमिका तथ्यों की वास्तविक स्थिति से अवगत होते हुए भी मिथ्या प्रतिपादन करने तथा झूठे साक्ष्य प्रस्तुत करने की बताई गई है।

3. आरोपपत्र पर कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(क)(i) के अधीन निषेध का आग्रह करते हुए एक याचिका प्रस्तुत की

और यह निवेदन किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के अंतर्गत अपराध के संबंध में संज्ञान केवल "संबंधित लोक सेवक या उसके प्रशासनिक अधीनस्थ किसी अन्य लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत" के आधार पर ही लिया जा सकता है। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत आरोपपत्र ऐसी शिकायत नहीं है। विचारण न्यायालय ने उक्त याचिका को निरस्त कर दिया।

4. उच्च न्यायालय के समक्ष दायर पुनरीक्षण में, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को पलट दिया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि:

> *"..... चूँकि अंतिम प्रतिवेदन में भारतीय दंड संहिता की धारा 182 का उल्लेख किया गया है, अतः सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिखित शिकायत अत्यंत आवश्यक है और इसमें किसी प्रकार का विचलन नहीं किया जा सकता। आगे, धारा 195(1)(क)(iii) में यह उपबंधित है कि यदि ऐसे अपराध के संपादन के लिए कोई आपराधिक षड्यंत्र किया गया हो, तो भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिखित शिकायत आवश्यक है। प्रस्तुत वाद में, अंतिम प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि सभी अभियुक्तों ने मिलकर उक्त कृत्य करने का षड्यंत्र रचा और सहमति व्यक्त की। साथ ही, चूँकि अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अधीन अभियोग लंबित है, अतः न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि प्रत्येक अभियुक्त पर परोक्ष दायित्व निहित है। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत प्रतिरक्षा निराधार है। यह पूर्व में ही इंगित किया जा चुका है कि धारा 195(1)(क)(i) में उल्लिखित अपराधों के संबंध में लिखित शिकायत अत्यंत आवश्यक है। अतिरिक्त रूप से, जैसा कि पूर्व में कहा गया है, प्रस्तुत वाद में धारा 120-ख भी लागू है। ऐसी परिस्थितियों में भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(क)(i) एवं (iii) के*

प्रावधानों के अनुसार लिखित शिकायत अत्यंत आवश्यक है। अधीनस्थ न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि उच्च न्यायालय ने केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को अन्वेषण करने तथा अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था और वही किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश धारा 195 दंड प्रक्रिया संहिता के अनिवार्य प्रावधानों की अवहेलना अथवा उन्हें परे रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। इन परिस्थितियों में प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत तर्कों में कोई सार नहीं है। यह पूर्व में ही विस्तार से विवेचित किया जा चुका है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वर्तमान याचिका को निरस्त करने हेतु दिए गए कारण प्रचलित विधि के पूर्णतः प्रतिकूल हैं और उन्हें त्यागा जा सकता है।"

5. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।

6. अपीलकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि लोक हित के तत्व के कारण ही उच्च न्यायालय ने मिथ्या दावे से संबंधित आरोप की जांच के लिए अपराध शाखा–अपराध अन्वेषण विभाग को निर्देशित किया था। तत्पश्चात दिनांक 1 मार्च, 2006 को रिट याचिका संख्याएँ 7389, 39956 तथा 39968 सन् 2005 में पारित एक अन्य आदेश द्वारा मामले को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को हस्तांतरित करने का निर्देश निम्नलिखित शब्दों में दिया गया:

"तथापि, हम विवरणों में प्रवेश करने से विरत रहते हैं, अन्यथा इससे किसी भी पक्ष को संभावित रूप से क्षति पहुँच सकती है, किन्तु हमारा मत है कि चूँकि आरोप मुख्यतः स्थानीय पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध निर्देशित हैं, अतः मामले की जांच एक स्वतंत्र एजेंसी जैसे केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को सौंपना वांछनीय है, ताकि सभी संबंधित पक्ष, जिनमें बीमा कंपनियाँ भी सम्मिलित हैं, आश्वस्त हो सकें कि एक स्वतंत्र एजेंसी

इस मामले की जांच कर रही है और इससे जांच के अंतिम परिणाम को विश्वसनीयता प्राप्त होगी। श्री सोमयाजी यह कहने में सही हो सकते हैं कि स्थानीय पुलिस निष्ठापूर्वक जांच कर रही है, किन्तु फिर भी उसमें विश्वसनीयता का अभाव रहेगा, क्योंकि आरोप मुख्यतः पुलिस विभाग के विरुद्ध हैं। अतः हमारे मत में न्याय के हित में यह उपयुक्त एवं वांछनीय होगा कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी तथा अन्य बीमा कंपनियों द्वारा दायर शिकायतों के संबंध में जांच तत्काल केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को सौंप दी जाए।

तदनुसार, हम यह निर्देश देते हैं कि केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो उक्त बीमा कंपनियों द्वारा दायर शिकायतों के साथ-साथ विभिन्न पुलिस थानों द्वारा कूटित प्राथमिकी के उपयोग से संबंधित शिकायतों की जांच करेगा।"

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में, प्रावधान की सम्यक् व्याख्या के आधार पर, उच्च न्यायालय के निर्देश के आलोक में धारा 195 का निषेध लागू नहीं होता।

प्रश्न यह है कि क्या संबंधित अपराध, अर्थात् भारतीय दंड संहिता की धारा 182, के संबंध में न्यायालय द्वारा संज्ञान ग्रहण करते समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(क)(i) का अनुपालन नहीं किया गया है।

7. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195(1) इस प्रकार उपबंधित करती है:

"195. लोक सेवकों के विधिसम्मत प्राधिकार के अवमानना के लिए अभियोजन, लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए तथा साक्ष्य में प्रस्तुत दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए—(1) कोई भी न्यायालय संज्ञान ग्रहण नहीं करेगा—

(क)(i) भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धाराएँ 172 से 188

(दोनों सहित) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, या

(ii) ऐसे अपराध के किसी उकसावे अथवा ऐसे अपराध के किए जाने के प्रयास का, या

(iii) ऐसे अपराध के करने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का,

सिवाय इसके कि संबंधित लोक सेवक या उसके प्रशासनिक अधीनस्थ किसी अन्य लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत प्रस्तुत की गई हो;

(ख)(i) भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की निम्नलिखित धाराओं के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, अर्थात् धाराएँ 193 से 196 (दोनों सहित), 199, 200, 205 से 211 (दोनों सहित) तथा 228, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय की किसी कार्यवाही में या उसके संबंध में किए जाने का आरोप हो, या

(ii) उक्त संहिता की धारा 463 में वर्णित किसी अपराध का, या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय की किसी कार्यवाही में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिए गए किसी दस्तावेज के संबंध में किए जाने का आरोप हो, या

(iii) उपखंड (i) या उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध को करने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का, अथवा ऐसे अपराध के करने के प्रयास का, या ऐसे अपराध के लिए उकसावे का,

सिवाय इसके कि उस न्यायालय द्वारा, या ऐसे किसी अन्य न्यायालय द्वारा जो उस न्यायालय के अधीनस्थ हो, लिखित शिकायत प्रस्तुत की गई हो।"

(जोर दिया गया)

8. अपीलकर्ता—केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि विधि के अधीन निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में संज्ञान ग्रहण करने पर जो निषेध लगाया

गया है, उसका उद्देश्य निजी पक्षकारों द्वारा निराधार अथवा उत्पीड़क कार्यवाहियों पर नियंत्रण रखना है। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम माता भीख, (1994) 4 एस.सी.सी. 95** में यह अभिमत व्यक्त किया गया था:

> *"6. इस धारा का उद्देश्य व्यक्तियों को उन अपराधों के संबंध में, जो इसमें विनिर्दिष्ट हैं, निजी व्यक्तियों के उकसावे पर द्वेष, दुर्भावना या तुच्छता से प्रेरित होकर अपर्याप्त सामग्री या अपर्याप्त आधार पर उत्पीड़क अभियोजन से संरक्षित करना है। इस धारा के प्रावधान निःसंदेह अनिवार्य हैं और न्यायालय को इसमें उल्लिखित किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है, जब तक कि धारा के अनुसार 'संबंधित लोक सेवक' की लिखित शिकायत न हो; इसके अभाव में भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के अंतर्गत विचारण प्रारंभ से ही शून्य हो जाता है। देखें—दौलत राम बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1962 सर्वोच्च न्यायालय 1206....."*

9. यह प्रस्तुत किया गया कि इस प्रावधान की रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि जिन निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में निषेध स्थापित किया गया है, उनका सार्वजनिक न्याय प्रशासन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। किसी निजी पक्षकार के विरुद्ध, केवल संबंधित लोक सेवक या उसका वह वरिष्ठ, जिसके अधीन वह प्रशासनिक रूप से कार्य करता है, ही शिकायत प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत है। इस संदर्भ में इस न्यायालय के निर्णय, ***इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह, (2005) 4 एस.सी.सी. 310*** पर अवलंबित किया गया, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि ऐसे प्रावधान की वह व्याख्या, जिसके परिणामस्वरूप अपराध का पीड़ित निरुपाय हो जाए, अस्वीकार्य है और व्याख्या ऐसी होनी चाहिए जो विधि के उद्देश्य को अग्रसर करे(कंडिका 23 एवं 25)। इस न्यायालय की संविधान पीठ ने धारा 195(1)(ख)(ii) के अधीन निषेध की व्याख्या इस प्रकार की कि वह केवल उन दस्तावेजों तक सीमित है जिनमें जालसाजी न्यायालय में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिए जाने के पश्चात

की गई हो। यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि दस्तावेज के न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने से पूर्व ही जालसाजी की गई हो, तो उक्त प्रावधान के अधीन निषेध लागू नहीं होगा। ***पेरुमल बनाम जनाकी,(2014) 5 एस.सी.सी. 377*** में यह प्रतिपादित किया गया कि यदि उच्च न्यायालय, एक उच्चतर न्यायालय के रूप में, धारा 195(1)(ख)(i) के अंतर्गत आने वाले अपराध के संबंध में शिकायत दायर करने का निर्देश देता है, तो उक्त प्रावधान का निषेध लागू नहीं होगा। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान वाद में धारा 195(1)(क)(i) के अधीन संरक्षण लागू नहीं हो सकता, क्योंकि यह किसी निजी पक्षकार के कहने पर नहीं, बल्कि उच्च न्यायालय के निर्देश पर केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जांच कराई गई थी। "ऐसा अन्य लोक सेवक, जिसके अधीन वह प्रशासनिक रूप से कार्य करता है" की अभिव्यक्ति में उच्च न्यायालय को अपवर्जित नहीं किया जाना चाहिए।

10. प्रतिवादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन किया। यह प्रस्तुत किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के अंतर्गत अपराध के संज्ञान ग्रहण पर लगाए गए वैधानिक निषेध की उपेक्षा करने का कोई आधार नहीं है, सिवाय इसके कि संबंधित लोक सेवक अथवा उसके प्रशासनिक वरिष्ठ द्वारा लिखित शिकायत प्रस्तुत की गई हो, और इस अभिव्यक्ति में उच्च न्यायालय को सम्मिलित नहीं किया जा सकता। यह भी तर्क दिया गया कि यद्यपि किसी लोक सेवक द्वारा अपने सार्वजनिक कर्तव्य के पालन में विफल रहने पर उच्च न्यायालय द्वारा उसे या उसके वरिष्ठ को *मैंडमस की रिट* के माध्यम से शिकायत दायर करने का निर्देश दिया जा सकता है, तथापि केवल जांच कराने का उच्च न्यायालय का निर्देश, संज्ञान ग्रहण पर लगाए गए वैधानिक निषेध को अपवर्जित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस संदर्भ में **एम. एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 1 एस.सी.सी. 278** पर अवलंबित किया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया:

"5. भारतीय दंड संहिता का अध्याय 11 'झूठे साक्ष्य तथा लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों' से संबंधित है और उसमें निहित धारा 193 न्यायिक कार्यवाही में झूठा साक्ष्य देने या गढ़ने के लिए दंड का प्रावधान करती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 यह उपबंधित करती है कि जहाँ कोई कृत्य लोक सेवकों के विधिसम्मत प्राधिकार के अवमान का अपराध बनता है या लोक न्याय के विरुद्ध अपराध, जैसे धारा 193 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत झूठा साक्ष्य देना, अथवा न्यायालय में वास्तव में प्रयुक्त दस्तावेजों से संबंधित अपराध बनता है, वहाँ निजी अभियोजन पूर्णतः निषिद्ध है और केवल वही न्यायालय, जिसके संबंध में अपराध किया गया है, कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है। धारा 195 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान अनिवार्य हैं और जब तक उक्त धारा के अनुसार लिखित शिकायत प्रस्तुत न की जाए, कोई भी न्यायालय उसमें उल्लिखित अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं रखता। यह स्थापित विधि है कि प्रत्येक गलत या असत्य कथन के आधार पर अभियोजन का आदेश देना आवश्यक नहीं होता, बल्कि न्यायालय को न्याय प्रशासन के व्यापक हित में ही अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए अभियोजन का आदेश देना चाहिए।"

11. हमने प्रतिपक्षी प्रस्तुतियों पर विचार किया है। हमें अपीलकर्ता की ओर से उठाए गए तर्क में पर्याप्त बल प्रतीत होता है। यद्यपि किसी निर्दिष्ट अपराध के संज्ञान ग्रहण पर लगाया गया निषेध अनिवार्य है, तथापि इसे उस उद्देश्य के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसके लिए ऐसा निषेध स्थापित किया गया है। यह निषेध अपराध के विरुद्ध उपाय को समाप्त करने के लिए नहीं, बल्कि किसी निजी व्यक्ति द्वारा झूठे या तुच्छ अभियोजन से निर्दोष व्यक्ति की रक्षा करने के लिए है। "लोक सेवक या उसका प्रशासनिक वरिष्ठ" की अभिव्यक्ति में उच्च न्यायालय को अपवर्जित नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त उद्धृत उच्च

न्यायालय के निर्देश में यह स्पष्टतः निहित है कि न्याय के हित में संबंधित अपराध का संज्ञान लेना आवश्यक था। उच्च न्यायालय का निर्देश उस स्थिति के समतुल्य है जिसमें कोई प्रशासनिक रूप से वरिष्ठ लोक सेवक विधि द्वारा अपेक्षित लिखित शिकायत करने का निर्देश देता है। धारा द्वारा किसी निजी व्यक्ति द्वारा तुच्छ शिकायत दायर करने के विरुद्ध जो संरक्षण प्रदान किया गया है, वह उस स्थिति में सुनिश्चित हो जाता है जब उच्च न्यायालय यह पाता है कि मामले की जांच लोक हित में आवश्यक है। ऐसी स्थिति में धारा 195 का सहारा लेकर उस निर्देश को निष्फल नहीं किया जा सकता। जब एक बार उच्च न्यायालय धारा 195 में उल्लिखित किसी निर्दिष्ट अपराध के संबंध में अन्वेषण का निर्देश देता है, तब धारा 195(1)(क) के अधीन निषेध लागू नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण विधि के उद्देश्य को विफल करेगा और उसे स्थिर नहीं रखा जा सकता।

12. तदनुसार, हम इन अपीलों को स्वीकार करते हैं और आक्षेपित आदेश को निरस्त करते हैं। चूँकि ये मामले पिछले पंद्रह वर्षों से अधिक समय से लंबित हैं, अतः न्याय के हित में यह उपयुक्त होगा कि कार्यवाही यथासंभव छह माह के भीतर पूर्ण की जाए।

देविका गुजराल अपीलें स्वीकार की गईं।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।